Mere creation of irrigation facilities does not solve problems. It needs effective use for crop protection and production. Irrigation water is a costly and scarce input and it will be even more costly with the rising prices and extension of irrigation to increasingly difficult terrains in future to meet rising demands for food, fodder, feeds, fiber, and fuel for the growing human and livestock populations. The competing demands on water for uses because of urbanization and impending industrialization may restrain the availability of water for crops. Therefore, simultaneously with the creation of irrigation potential, its optimum and scientific use must be ensured.

REFERENCES:-

1. Dakashina Murthe, Michael, C. & Sri Mohan, A.M. – Water Resources of India and their Utilisation in Agriculture (Preface).
2. Prof. Pisharoty, P.R. – Water for Development over coming the constraints, Yojana, January 26, 1995, p. 23.
3. Rao, K.L. – Scope of Hydrology in India Bhagirath, July 1965, p. 61.
4. Khosla, A.N. – An Appraisal of Water Resources, UNESCO, 1940.
5. Rana – Our Water Resources, Popular Science Series, National Book Trust of India, p. 11.
6. Dr. Jha, U.M. – Irrigation and Agricultural Development.
7. Rana – Our Water Resoruces, p. 12.
8. Report of the Irrigation Commission of India, 1989.
9. Khosla, A.N. – An Appraisal of Water Resources UNESCO, 1940.
10. Report of Central Water Commission, 1972.
11. Sinha, L.N. – Wealth of Mithila, Darbhanga 1957 (Unpublished)p. 28.
12. Dr. Mishra, J.N., Growth, Impact and Prospect of Irrigation in West Champaran District, 1987, p. 75 (unpublished Ph.D. thesis).
13. The Gazetteer of India, 1965, p. 11.
14. American Scientists, Geological Survey of U.S.A. Quoted by Memoria, C.B., Geography of India, p. 217.
15. Memoria, C.B., Geography of India, Shivalal& Agrawal Company, Agra, p. 227.
16. Dr. Prasad, R.K. Chairman, Ground Water Development Problem and Prospects, January 1995, pp. 29-30.
17. Memoria, C.B., Geography of India, p. 228.
18. Flood control, Drainage and Irrigation Schemes in North Bihar, Public Relation Department, Government of Bihar, Patna, November 1955.
19. Dr. Prasad, R.K., ground Water Development Problems and Prospects, pp. 30-31.
20. Report of the Irrigation Commission of India, Volume 1, 1972.

****

भारतीय चिंतन के आधार स्तंभ आचार्य शंकर

बलजीत बिहारी*

प्राचीन भारतीय चिंतन में निहित आधारभूत तत्व हमारी संस्कृति और संस्कार में निरंतर बना हुआ है। वर्तमान समाज में विपथगमन का मूल कारण उन मूल्यों से वेगानगी या उनका अनुचित व्याख्या है। हमारा न केवल वर्तमान, बल्कि भविष्य उन अतीत के आधार स्तम्भ पर टिका है। हम उन आदर्श चिंतनों से बच कर नहीं निकल सकते जो वेदों, अरण्यकों, उपनिषदों तथा इनकी ही व्याख्या या आलोचना के कारण विकसित हुई। आदि शंकराचार्य की महत्ता इसलिए है कि उन्होंने सभी धाराओं का उचित व्याख्या कर एक समंवित ;बवउचवेपजमद्ध रूप प्रदान किया। यही कारण है कि शंकराचार्य के चिंतन में आस्तिक–नास्तिक, भौतिक–अध्यात्मिक, रूढ़िवादी–प्रगतिवादी जैसे विरोधी विचार एक साथ मिलते हैं। प्रशंसकों ने उन्हें वेदांत के शीर्ष आचार्य माना तो आलोचकों ने छद्म बौद्ध कहा, परंतु गौर से देखा जाए तो यह द्वंद्व दो विरुद्धों के सामंजस्य के रूप में वैदिक काल से ही निरंतर बना हुआ है। जिससे न तब के आचार्य बच पाए और न आज के! अतः इसका एक ऐतिहासिक अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

आदि शंकराचार्य का सबसे बड़ा महत्व यह है कि उन्होंने हिन्दुओं को पौराणिक आडम्बरमय धर्म से मोड़ कर उपनिषदों की ओर उन्मुख कर दिया। जैसे गीता ने बीसवीं सदी में आकर लोकमान्य तिलक के हाथों नवीनता प्राप्त की, वैसे ही शंकराचार्य के हाथों उपनिषद की शिक्षा नवीन हो गयी। उन्होंने अद्वैत को प्रमुखता देते हुए भी विष्णु, शिव, शक्ति और सूर्य पर स्तोत्र लिखे, जिससे विभिन्न पंथों में समंवय का आग्रह प्रकट होता है। उन्होंने मंदिरों में बलिप्रथा का विरोध किया तथा बौद्ध संघ की भांति ही सनातनी संन्यासियों के संघ स्थापित करवाए। भारत की भौगोलिक एकता को प्रत्यक्ष करने के निमित्त देश की चार दिशाओं में चार पीठ स्थापित करवाए। जो बदरिकाश्रम, द्वारका, जगन्नाथपुरी, और श्रृंगेरी में अवस्थित है तथा जहाँ जाने की धार्मिक अभिलाषा प्रत्येक हिन्दू के मन में रहती है।1

श्री आचार्य शंकर आज से बारह सौ वर्ष पूर्व जितने प्रासंगिक और अनिवार्य थे आज कहीं उससे अधिक प्रासंगिक हैं। उनके चिंतन का प्रभाव बाद

***शोधार्थी, यू.जी.सी.–नेट प्रा.भा.इ. एवं पुरातत्त्व विभाग पटना विश्वविद्यालय,पटना**

के सभी भारतीय और पाश्चात्य दार्शनिकों पर देखा जा सकता है। रामानुज, निम्बार्क, मध्व, वल्लभ, चैतन्य, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, अरविंद, विनोबा जैसे भारतीय दार्शनिक उनके विचारों के खण्डन–मण्डन के बावजूद कहीं न कहीं उनसे प्रभावित हैं। विदेशी दार्शनिकों में–देकार्त, स्पिनोजा, लाइब्निज, बर्कले, काण्ट, हीगल शंकर के दृष्टि–सृष्टिवाद, मायावाद, अद्वितीय सत्ता तथा जगत् के मिथ्यात्व सिद्धांत से किसी न किसी रूप में प्रभावित हैं। आधुनिक दार्शनिक टेमलिन, रानाडे, राधाकृष्णन, ए०के० राय चौधरी तथा डा० एस०के० दस ने अपने–अपने ग्रंथों में पाश्चात्य दार्शनिकों के साथ शंकर के विचार का तुलनात्मक अध्ययन कर उन्हें अद्वैत वेदांत से प्रभावित बताया है।2 इतना ही नहीं हजरत मुहम्मद की मृत्यु (622) के बाद इस्लामी दर्शन में भी बाहरी विचारधाराओं के सम्पर्क के परिणामस्वरूप अनेक सम्प्रदाय उठ खड़े हुए। अल्लाफ अबुल हुसैन अल–अल्लाफ (845) के मोतजली सम्प्रदाय, मु० बिन कराम के करामती सम्प्रदाय तथा अबुल हसन अशअरी के अशअरी सम्प्रदाय (873–935) पर अद्वैत वेदांत की छाया स्पष्ट दिखायी पड़ती है। इस्लाम का व्यापारियों के रूप में आगमन दक्षिणी समुद्र तटों पर 636 ई० में ही हो गया था। सिन्ध पर मु० बिन कासिम की चढ़ाई 712 ई० में हुई3 पर भारत के पश्चिमी समुद्र तट पर अरब सौदागर बहुत पहले से आ रहे थे। मोपला लोगों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया था। बहुत सम्भव है कि अरबों के माध्यम से शंकर का अद्वैत भारत से बाहर गया हो। भारतवर्ष से जैसे गणित आदि का ज्ञान अरब लोग यूरोप ले गए, उसी तरह संस्कृत के दर्शन, काव्यशास्त्र आदि अरबी में अनुदित होकर बाहर पहुँचे। सूफियों का तसव्वुफ या इस्लामी रहस्यवाद तथा यती–वृत्ति शंकर के औपनिषदिय मार्ग के ढर्रे की है। मूल इस्लाम में यती–वृत्ति की प्रधानता नहीं है। इस्लाम के बौद्धिक व्याख्याता गजाली (1059–1111) के विचारों पर तो राहुल जैसे विचारकों ने भी ईश्वर और जीव के स्वभाव में मौलिक एकता के सिद्धांत पर शंकर के प्रभाव स्वीकारा है। दरअसल– सूफियों के यहाँ जो रहस्यवाद था वो भारत में आकर शंकर के अद्वैत तथा नाथों के हठयोग के प्रभाव में आकर पूर्ण भारतीय हो गया।4

श्री शंकर के प्रादुर्भाव के समय भारत सांस्कृतिक ह्रास, राजनीतिक पराभव और वैचारिक टुकड़ों में बँटा हुआ था। बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त, वैष्णव, सिद्ध–योग, वज्रयान, सहजयान, वाममार्गी तंत्रवाद, कापालिक, नीलपट, आजीवक, चार्वाक तथा लोकायत जैसे न जाने कितने अवैदिक मत–मतान्तरों के जाल में हिन्दू जनता फँसी थी। शाक्तों से पूर्व बौद्धों की कुत्सित आचार पद्धति वज्रयान के रूप में कनिष्क के काल प्रथम शती ई० से ही प्रकाश में आ चुकी थी। अभारतीय प्रभाव से उपजी यह उपासना कालान्तर में लकुलीश और कापालिक प्रचण्ड–साधनाओं

के रूप में विकसित हुई। 7वीं शताब्दी का सम्पूर्ण साहित्य इनके आतंक से आतंकित है। इसी के प्रभाव में आकर पूर्वी भारत में शाक्तों के यहाँ तथा दक्षिण भारत में कापालिक शैवों ने यज्ञ–बलि की विकृत परिपाटि श्मशान साधना व नरबलि को बढ़ावा दिया। आचार्य शंकर ने इस प्रकार के विभत्स और विभाजनकारी साधना का विरोध किया।

आचार्य शंकर को भारतीय एकता के सूत्रधार के रूप में स्वीकार किये जाने के पीछे जो मुख्य कारण है वो यह कि उन्हें इस बात का एहसास था कि भारत की राजनीतिक–सामाजिक विभाजन के पीछे धर्म–दर्शन का विभाजन भी एक कारण रहा है। अतः एकता हेतु वैचारिक एकता यानि दार्शनिक स्तर पर मतैक्य होना आवश्य था। अतः सबसे पहले तो अवैदिक दार्शनिकों को परास्त कर सनातन का पुनरूत्थान तथा गीता, उपनिषद और वेदांत की पुनः प्रतिष्ठा किये। पहले तो उन्होंने दार्शनिक युक्तियों और अकाट्य तर्कों से हिन्दुत्व के विरोधियों को क्षीण किया और फिर भारतीय तत्त्व चिन्तन की सांख्य, न्याय, वैशेषिक योग तथा पूर्व मीमांसा सिद्धांतों का विवेचन कर अद्वैत दर्शन की प्रतिष्ठा किए। शंकर से पूर्व आस्तिक–नास्तिक दर्शनों का जो जटिल संघर्ष हो रहा था–शंकर को उसके बीच अपना मार्ग खड़ा करना था। उन्होंने कर्मकाण्ड का प्रतिरोध किया। मण्डन मिश्र के साथ हुए शास्त्रार्थ में कर्मकाण्ड की निस्सारता का प्रतिपादन है।5 इसी आधार पर शूद्र, नारी, ब्राह्मण सबको ज्ञानार्जन और ब्रह्मचिंतन का समान अधिकार देकर शंकर ने समतावादी विचारगत एकता के पक्षधर समाज की नींव डाली। शंकर मत में रूढ़िवादिता और अंधविश्वास का अभाव है। उनका चिंतन मानव को जाति, धर्म, वर्ण और वर्ग विशेष की सीमाओं से ऊपर उठाकर सार्वभौम रूप प्रदान करता है। परवर्ती कर्मकाण्डी दार्शनिकों ने इसीलिए उन्हें प्रच्छन्न बौद्ध कह कर तिरस्कृत करने का असफल प्रयत्न किया।

पद्म पुराणकार ने 'मायावादमसच्छस्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव च', रामानुज ने 'वेदवादच्छद्म प्रच्छन्न बौद्धनिराकरणे निपुण प्रपंचितम्' (श्री भाष्य), भास्कराचार्य ने महायान बौद्ध गाथितं मायावद्म' (भास्कर भाष्य) तथा डॉ० भरतसिंह उपाध्याय, डॉ० एस० एन० दास गुप्ता, डॉ० बरूआ तथा राहुल सांकृत्यायन ने शंकर को विज्ञान–भिक्षु आदि बौद्ध दार्शनिकों का ऋणी बताया है। राहुल जी ने 'दर्शनदिग्दर्शन' पुस्तक में शंकर मायावाद को नागार्जुण के शून्यवाद का नामान्तर मात्र कहा है।

हमारे विचार में उक्त मत दुराग्रहपूर्ण है। मायावाद में सदसद्वाद से विलक्षण अनिर्वचनीय 'सत्' की प्रतिष्ठा होने के कारण उसे सत्शास्त्र कहना पद्मपुराणकार की साम्प्रादायिक नीति का ही परिणाम है। रामानुज का उन्हे विज्ञानवादी कहना भी युक्तिसंगत नहीं क्योंकि विज्ञानवादी वाह्मजगत् को विज्ञान

मात्र मानता है, जबकि शंकर उसकी व्यवहारिक सत्ता स्वीकार करते हैं। छान्दोग्यभाष्य में 'दिग्देश गुणगति फलभेद शून्य' कहते हुए शंकर ने शून्यवाद का भी विरोध किया हैं। ब्रह्मसूत्र भाष्य में स्वयं शंकर ने विज्ञानवाद आदि बौद्धमतों का खण्डन किया है। उपनिषदों का प्रभाव बौद्धों और शंकर पर समान है। अतः एक स्रोत से सामग्री लेने के कारण समानता दिखाई पड़ जाती है अन्यथा दोनों में विषमता पद–पद पर परिलक्षित होती है। डॉ० राधाकृष्ण और डॉ० राममूर्ति शर्मा 'इण्डियन फिलासफी' तथा अद्वैत वेदांत ग्रंथों में शंकर के प्रच्छन्न बौद्ध होने का स्पष्ट खंडन करते है। और तो और, आचार्य शंकर गौड़पादाचार्य के 'अजातवाद' की अपेक्षा अद्वैत की प्रतिष्ठा अनिर्वचनीयवाद के आधार पर ही करते है। गौड़पाद की माया असत् और शंकर की माया सद्सद् से विलक्षण अनिर्वचनीय है। डॉ० राममूर्ति शर्मा का कहना सर्वथा समीचीन है कि 'शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवाद की सिद्धांत पूर्णतय न भर्तृहरि का शब्दाद्वयवाद है, न गौड़पादाचर्य का अजातवाद, न बौद्धों का विज्ञानवाद और न शून्यवाद न योगवाशिष्ठ का कल्पनावाद, न कश्मीर शैवदर्शन का स्पन्दवाद और न प्रत्यभिज्ञावाद और न शाक्तों का शक्त्यद्वैतावाद। यह स्वतन्त्रधारा तो ऋग्वेद से उत्पन्न हुई है और संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों, सूत्रों, पुराणों, गीत एवं तंत्रादि तथा बादिर–प्रभृति प्राचीन आचार्यों से सार ग्रहण करती हुई शंकराचार्य भाष्यग्रंथों में आ कर ज्ञानगंगा के रूप में प्रवाहित हुई है।6

शंकराचार्य के बाद के आचार्यों में सुरेशवराचार्य, पद्मपादाचार्य, वाचस्पति मिश्र, सर्वज्ञात्म मुनि अद्वैतानंद बोधेन्द्र, आनंदबोध भट्टारकाचार्य, प्रकाशात्मयति, चितसुखाचार्य, अमलानंद, विधारण्य, प्रकाशानंद, मधुसूदन सरस्वती, ब्रह्मानंद सरस्वती, धर्म राजाध्वरीन्द्र, गंगापुरी श्री कृष्णमिश्रयति, श्री हर्ष, रामाद्वयाचार्य, शंकरनंद, आनंदगिरी, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, अरविन्द, स्वामीकरपात्री जी, स्वामी अखण्डानंद सरस्वती, विनोबा, राधाकृष्णन तथा विद्यानंदगिरी जैसे अद्वैतवादी दार्शनिकों की लम्बी परम्परा सामने आती है। शंकर सिद्धांतों के स्पष्टीकरण और पल्लवन में इन भाष्यकारों और टीकाकारों का सुदीर्ध योगदान रहा है। जीव और ईश्वर, जीव की एकता तथा अनेकता, जीव और आत्मा, अविद्या एवं माया मिथ्यात्व, माया की विषयिता और विषमता तथा मुक्ति और वृत्तिके स्वरूप पर अनेक मतभेदो का सृजन और समाधान इन पवर्ती दर्शनिकों में मिलता है। कुछ ने नवीन उद्भावनाएँ भी दी। जैसे सुरेश्वराचार्य का आभासवाद, पद्मपाद का प्रतिबिम्बवाद, वाचस्पति मिश्र का अवच्छेवाद, सर्वज्ञात्ममुनि का अधिष्ठानवाद, प्रकाशात्मयति का आश्रयाश्रयि एवं विषय–विषयिभाववाद, अमलानंद का दृष्टि–सृष्टिवाद तथा मधुसूदन सरस्वती का एकजीववाद ऐसे ही नव्य विचार बिन्दु है जिनसे वेदांत के दुरूह पक्षों पर नवीन प्रकाश पड़ता है। इन दर्शनिकों में

सुरेश्वराचार्य कृत तैतिरीय श्रुति वार्तिक, नैष्कर्म्मसिद्धि, ब्रह्मसूत्र भाष्य वार्तिक तथा वार्तिकसार संग्रह, पद्मपादाचार्य कृत पंचपादिका, वाचस्पति मिश्र कृत भामती ब्रह्मसूत्रशंकर भाष्य व्याख्या तथा ब्रह्मतत्व समीक्षा (सुरेश्वराचार्य कृत ब्रह्मसिद्धि की टीका); सर्वज्ञात्ममुनिक की संक्षेप शारीरिक, प्रकाशात्मयति कृत पंचपादिका टीका, चित्सुखाचार्य कृत तत्वप्रदीपिका, न्याय मकरन्द और खंडन खंड खाद्य टीका विधारण्य स्वामीकृत पंचदशी, मधुसूदन सरस्वती कृत अद्वैतसिद्धि, वेदांत कल्पलतिका तथा गूढ़ार्थ दीपिका, धर्मराज ध्वरीन्द्र की वेदांत परिभाषा, एवं विनोवाकृत उपनिषद् एवं गीता भाष्य रचनाएँ प्रमुख है।

पाश्चात्य विद्वानों में कोलबुक, विल्सन, रोअर, कावेल, बोथलिंक, मैक्समूलर, डायसन, बेवर, थीबो, जैकर्व, गाफ, बेनिस तथा विलियम जोन्स ने अद्वैत वेदांत की महत्वपूर्ण समालोचनाएँ लिखी है। शंकर का युगप्रवर्तक आचार्य होना इससे भी सिद्ध है कि उनमें प्रादुर्भाव के बारह सौ वर्षों बाद भी उनके विचारों के चिंतन–मनन की अक्षुण्ण गोमुखी प्रवाहमान है, वह क्षीण और मंद नहीं हुई है। भारतीय तथा देश–विदेश के अन्यान्य विश्वविद्यालयों में उनके विचारों और उनके समानधर्मा विचारकों की तुलना में उनके योगदान का शोधपरक मूल्यांकन हो रहा है। अद्वैतवाद के आयाम इतने वैविध्यपूर्ण है कि भारतीय–अभारतीय दृष्टि से सोचने समझने की संभावना कभी न्यून नहीं हो पाती। शंकर के विचारों में बहस खोलने की इतनी संभावनाएँ है कि वहाँ दार्शनिक जड़तावाद पैदा ही नहीं होने पाता। विविध वैष्णव–वेदान्तिकवाद का जन्म इसी कारण संभव हो सका। विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, अचिन्त्यभेदवाद, शक्त्यद्वैत, ईश्वराद्वयवाद तथा त्रैतवाद शंकर की पीठ पर खडे होने वाले विरोधी सिद्धांत है पर प्रस्थानों को प्रेरित करने के लिए भी शंकर ही उत्तरदायी है। शंकर मत के न्यूनाधिक स्पर्श के बिना ये दार्शनिक विचारधाराएँ खड़ी ही नहीं हो सकती थी। यो तो अद्वैतवाद श्रुतियों की देन है पर आज वह शंकर मत का पर्याय बन गया है। वेदांत दर्शन अद्वैतदर्शन ही समझा जाने लगा है। आचार्य वही नहीं है जो मौलिक उद्भावना करता है आचार्य वह है जो भावी विचारकों पर इस तरह छाया रहता है कि वे उसे पढ़े समझे बिना सहमत–असहमत हुए बिना एक पग भी आगे बढ़ नहीं सकते। शंकर आज भी वैचारिक दिग्विजय के अभिषिक्त रथ पर वहीं खड़े है जहाँ आज से बारह सौ वर्ष पूर्व खड़े थे।

शंकर ने हिन्दू धर्म के पुनरूद्धार के लिए देश व्यापी यात्राएँ की। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण की यात्राओं में उनकी मार्गदर्शक श्रुति थी– 'मातृभूमिः पुत्रोअ्ह प्रार्थव्याः।' भारतीय इतिहास में राजपूती युग राजनीतिक बिखंडन का युग कहा जाता है। हर्ष के बाद अलगाव की प्रवृत्तियों में वृद्धि हुआ। मौखरी, आयुद्ध, प्रतिहार, राष्ट्रकूट, परमार, चौहान, गहलौत, सिसोदिया राजवंशों के अतिरिक्त पूर्व

और पश्चिम के राजपूत, पाल, सेन, राय शाहीय, करकोट, उत्पल तथा दक्षिण के चेदि, गंग, पल्लव, चोल; चालुक्य तथा पल्लव आदि राजवंश प्रतापी थे। उन्होंने कला, साहित्य और संस्कृति को संरक्षण दिया। पर 6वीं शती से 12वीं शती तथा विघटन एवं विभाजन की प्रवृत्तियाँ इतनी प्रवल हो गई कि देश एक भूगोल होकर भी अनेक राज्यों में बँट गया। हर्षवर्धन के काल में ही भारत के दो टुकड़े हो गए नर्मदा के उत्तर पुष्यभूति और कन्नौज के वर्मन राज्यों के विलय से बना हर्ष का साम्राज्य और नर्मदा के दक्षिण चालुक्य वंश के पुलकेशिन द्वितीय का साम्राज्य। निरंकुश, एकतंत्र, सामंतवाद, स्थानीयता और व्यक्तिवाद, राष्ट्रीयता और देशभक्ति का ह्रास तथा राजनीतिक उदासीनता और अनैतिक भोगवाद के कारण देश की अस्मिता नष्ट हो गई।

हर्ष युगोत्तर भारत पतनोन्मुख हिन्दु समाज की दिन प्रतिदिन बदलती और बिगड़ती विकृत कथा एवं दुर्दशा का इतिहास है। शंकर इसी किंकर्त्तव्यविमूढ़ता के बीच हिंदुत्व की एकता और सांस्कृति अखण्डता की रक्षा के लिए खड़े हुए। मैसूर में श्रृंगेरी, द्वारिका में शारदा, जगन्नाथपुरी में गोवर्धन तथा बद्रीनाथ में ज्योतिर्मठ की सथापना का उद्देश्य सम्पूर्ण भारत की एकता का प्रतिपादन करना था देशव्यापी धर्म प्रतिष्ठा के कार्य को बढ़ाने के लिए यह चार पीठ स्थापित हुए। सैनिक संगठन के लिए निर्वाणी, निरंजनी, जूना, अटल, अग्नि, आवाहन अखाड़े बनाए तथा गिरी, पुरी भरती, सागर, आश्रम, पर्वत, तीर्थ, सरस्वती, वन और आचार्य संज्ञक दशनाम सन्यासियों की परम्परा का प्रवर्तन कर सन्यास धर्म का अनुशासन किया। चार शंकर पीठो के आचार्य जगद्गुरू शंकर कहलाते है। दशनाम सन्यासी और शंकरचार्य दण्ड, कमण्डलु, रूद्राक्ष, भस्म तथा गैरिक वस्त्र धारण कर श्रुति–स्मृति द्वारा अनुमोदित धर्म का प्रचार–प्रसार करते हुए ब्रह्मसूत्र, गीता, उपनिषद् तथा विवेक चूड़ामणि जैसे ग्रंथों का व्याख्यन करते हुए देश की जनता को धर्मोन्मुख करते हुए निरंतर घूमते रहते हैं। सर यादुनाथ सरकार जैसे इतिहासिकारों ने यह बात लक्षित की है कि शंकरचार्य द्वारा स्थापित अखाड़ों और आश्रमों ने हिन्दूधर्म की रक्षा के लिए सशस्त्र प्रतिरोध भी किया है। परिवर्तित तथा बलात् अन्य ध र्मावलम्बी हिन्दुत्व में परिवर्तित कर इस विराट जाति की रक्षा की है। राष्ट्रीय और राजनीतिक एकता की ऐसी सुनियोजित परिकल्पना शंकर से पूर्व नहीं दिखाई पड़ती। मध्यकालीन राजनीतिक चेतना का राष्ट्रव्यापी उन्मेष उस राजनीतिक उदासीनता के युग में शंकर की सबसे बड़ी देन है। विभिन्न क्षेत्रो के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृति और राजनीतिक अनुशासन के लिए ही सन्यासी प्रचारको को दस श्रेणियो में विभाजित किया गया था। समष्टिमय मानव समाज की परिकल्पना शंकर को युगारवतार सिद्ध करती है। मुस्लिक और अंग्रेजी पराधीनता के युग में

मध्यकालीन संत संगठनों ने जो हथियारबंद आन्दोलन किया है, उनमें शंकरानुयायी संतो की बड़ी भूमिका रही है। वैष्णव अनी और अखाड़े, गोसाई विद्रोह तथा सतनामी विद्रोह एवं सिख गुरुओं का विद्रोह मूलतः धर्मरक्षा के लिए किया गया सशस्त्र मुक्ति आन्दोलन ही है। मुगलकालीन तथा मुगलोत्तर भारत में मराठों, राजपूत राजाओं, बुन्दलों तथा सिखो के विद्रोह में शंकरानुयायी प्रचारकों का स्थान है। 1857 के विद्रोह की रूपरेखा बनाने वाले स्वामी विरजानंद सरस्वती भी शंकर सम्प्रदाय के ही सन्यासी थे। डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकर ने आर्यसमाज के इतिहास में विस्तार के साथ इस तथ्य पर प्रकाश डाला है। सीताराम बाबा, दीनदयाल, तिरूपति के शिवराम बाबा जैसे कई सन्यासियों ने स्वाधीनता आन्दोलन के लिए बलिदान किया। डॉ० विद्यालंकर लिखते है कि दशनामी सन्यासियों की राजनीति तथा युद्धों में हाथ बँटाने की जो पुरानी परम्परा थी, उसे दृष्टि में रखते हुए यह मान सकना सर्वथा समुचित व संभव है कि एक वृद्ध दशनामी सन्यासी ने ही भारत से अंग्रेजों के शासन का अंत कर देने की योजना बनाई थी जिसके द्वारा सन् 1857 का स्वाधीनता संग्राम लड़ा गया। इस योजना के अनुसार सैनिको तथा सर्वसाधारण लोगों को अंग्रेजों के खिलाफ भड़कने के लिए कितने ही साधु–सन्यासी भारत के विविध नगरों, छावनियों तथा देहात में नियुक्त थे। यह बात न केवल सीताराम की गवाही से प्रमाणित है अपितु उस समय के कितने ही अन्य रिकार्डों में भी इसके उल्लेख है 1856 में मथुरा में मुनक्किद पंचायत की अध्यक्षता विरंजानंद जी ने की थी। सर्वखाप पंचायत के पुराने रिकार्ड में यह सामाग्री सुरक्षित है। 1855 के कुंभ पर स्वामी पूर्णानंद जी करनवल निवासी ने जो 110 वर्ष के थे नाना साहब, दयानंद आदि को स्वाधीनता की प्रेरण दी।7 अनुसंधान करने पर अनेक दशनामी सन्यासियों का कर्त्तव्य सामने आ सकते हैं जिन्होंने राष्ट्र उद्धार तथा स्वाधीनता के लिए अपने को बलिवेदी पर चढ़ा दिया। आद्य शंकर की इन मानस संतानों ने अपने आचार्य के स्वप्न को कभी खंडित नहीं होने दिया। शंकर के इस पक्ष का मूल्यांकन कभी होना शेष है।

इस तरह धर्म, संस्कृति, अतीत गौरव, राष्ट्रीय एकता तथा हिन्दू समाज के पुनरूद्धार के लिए शंकर के कार्य का मूल्यांकन और प्रचार देशवासियों के लिए तो प्रासंगिक हो सकता है पर उनके जगद्गुरू होने का अर्थ है कि वह विश्वभर के कल्याणकारी उपदेष्टा है। इस स्थिति में वेदांत की विश्वव्यापकता और उपयोगिता का भी विचार होना चाहिए। शंकर आज सम्पूर्ण संसार के लिए क्यों और किस प्रकार उपयोगी है। लोग शंकरमत को मायावाद मानकर 'जगत्मिथ्या' का प्रचारक और अव्यवहारिक दर्शन समझ लेते हैं।

आचार्य का उद्घोष है कि चरम सत्य श्रुति में निहित है। शास्त्र सिद्ध, साक्षात्कार सम्पन्न आचार्य की शरण ग्रहण करने पर ही प्राप्ति संभव है। ब्रह्मविद्या की महत्ता से आचार्य और जिज्ञासु दोनो महान् होता हैं, अतः सारे विवेचन को सारांश में कहा जाता है कि शंकर युग प्रवर्तक आचार्य हैं। वे भारत के नव निर्माता है, सांस्कृतिक उत्थान के पुरोधा हैं, हिन्दुत्व के केन्द्र है, सूक्ष्मचेता दार्शनिक हैं, ध र्म साधनाओं के समन्वयकर्त्ता है, परम्परा के परिशोधक, राष्ट्रीय एकता और अविभाज्य मानवता के पोषक है, श्रेष्ठ मेधा के आदर्श है, निषेधात्मक चिंतन पर विधेय सत्ता के स्वत्व का प्रतिष्ठापन करने वाले हैं, जीवन के आध्यात्मिक मूल्यों के व्याख्याता है, व्यापक सत्य के उद्घोषक और संकीर्णतम सत्यंशों के खण्डनकर्त्ता है और सबसे ऊपर मानवीय गरिमा और मानव मुक्ति के उद्धारक है। शंकर के ऋण से हिन्दू जाति कभी उऋण नहीं हो सकती। उनके आध्यात्मिक पुरुषार्थ का विश्व पर ऋण है। संसार को ऐसा विचारक शताब्दियों में भी नहीं मिलता।

संदर्भ–सूची

1. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, पृ०– 353
2. राकेश, विष्णुदत्त, भारतीय अस्मित और राष्ट्रीय चेतना के आधार श्री जगद्गुरु आद्य शंकराचार्य, पृ०– 17
3. श्रीवास्तव, ए० एल०, दिल्ली सल्तनत, पृ०– 12,13
4. श्रीवास्तव, के० सी०, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ०– 883
5. गैरोला, वाचस्पति, भारतीय धर्म शाखाएँ और उनका इतिहास, पृ०– 236
6. शर्मा, राममूर्ति, अद्वैतवेदांत, पृ०– 348
7. विद्यालंकर, सत्यकेतु, आर्य समाज का इतिहास (भाग–1), पृ०– 690